बिहार के इतिहास में कला एवं चित्रकला का विकास

श्याम मूर्ति भारती
(नेट – यू० जी० सी०)
(पी०–एच० डी० – ल० ना० मिथिला विष्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार)
इतिहास

विषय प्रवेषः

बिहार की धरती प्राचीनकाल से कला एवं चित्रकला हेतु प्रसिद्ध रही है। यहाँ की कलाओं को न सिर्फ राजकीय स्तर पर संरक्षण दिया गया बल्कि स्थानीय निवासियों द्वारा भी लोक कलाओं को संरक्षण देकर उसे आगे बढ़ाया गया। बिहार की धरती जैन धर्म के महावीर स्वामी की जन्म स्थली, बौद्ध धर्म की कर्मस्थली, सिखों के दसवें गुरू गोविंद सिंह जी की जन्म स्थली, हिन्दू धर्म एवं मुस्लिम धर्म से जुड़े कई महत्वपूर्ण स्थल होने के कारण भी भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बिहार में सभी धर्मों से जुड़े लोगों द्वारा भी बिहार की कला एवं संस्कृति को आगे बढ़ाने में महती भूमिका निभायी गई।

मौर्यकला

बिहार के इतिहास में कला का स्पष्ट प्रमाण मौर्य काल में देखने को मिलता है। मौर्यकालीन कला पहली बार काष्टकला से निकल कर पाषाण कला के रूप में स्थापित हुई। मौर्यकला से पूर्व कला में मिट्टी एवं काष्ट का प्रयोग होता था। मौर्यकाल में स्थापत्य कला के क्षेत्र में विषेष उन्नति देखने को मिलती है। मौर्यकालीन शासकों के कला प्रेमी होने के कारण भी कला को विषेष प्रोत्साहन दिया जाने लगा था। यद्यपि मौर्यकालीन कला को दो भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है – (1.) राजकीय कला एवं (2.) लोककला। जिन कलाओं को तत्कालीन शासकों द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया उसे राजकीय कला के नाम से जाना जाता है, तथा द्विविध क्षेत्रों में प्राप्त कला को लोककला की संज्ञा दी जाती है।

राजकीय कला के अन्तर्गत मौर्य राजप्रसाद, अषोक स्तम्भ तथा शासकों द्वारा निर्मित गुफाओं को रखा जा सकता है। परखम से प्राप्त यक्ष की मूर्ति, पटना से प्राप्त मूर्ति, बेसनगर से प्राप्त यक्षिणी की

मूर्ति तथा दीदारगंज (पटना) से प्राप्त चामरग्राहिणी की मूर्ति को लोककला के अन्तर्गत रखा जाता है। ये कलाकृतियाँ पाषाण निर्मित थी।

मौर्यकालीन राजकीय कला का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण सम्राट चन्द्रगुप्त का राजप्रसाद है। मौर्यकालीन स्थापत्य के अन्य उदाहरण पटना, राजगीर एवं गया के निकट बराबर की पहाड़ियों पर भी देखे जा सकते हैं। मगध सम्राट चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मित राजप्रसाद की प्रषंसा एरियन द्वारा भी की गई है। एरियन के अनुसार–''चन्द्रगुप्त के राजप्रसाद की शान शौकत का मुकाबला न तो सूसा न ही एकबेतना ही कर सकते हैं।''

कुम्हरार (पटना) से एक विषाल सभाभवन का अवषेष प्राप्त हुआ है। यह सभा भवन एक विषाल हॉल है जो पाषाण निर्मित 24 स्तम्भों पर टिके हुए हैं। इस सभा भवन की लम्बाई 140 फुट तथा चौड़ाई 120 फुट है। तथा इसकी एक अन्य विषेषता है कि इसकी छत एवं फर्ष लकड़ी के बने हुए हैं। अनेक विदेषी विद्वानों द्वारा मौर्यकालीन स्थापत्य कला की प्रषंसा की गई है। विदेषी यात्री मेगस्थनीज के अनुसार पाटलीपुत्र नगर को सुरक्षित बनाने हेतु नगर के चारों ओर लकड़ी की दीवार का निर्माण किया गया था, जिसके बीच–बीच में तीर चलाने हेतु छिद्र बने हुए थे। इस दीवार के चारों ओर दुष्मनों से रक्षा हेतु 60 फुट गहरी तथा 600 फुट चौड़ी खाई का निर्माण किया गया था।

मौर्यकालीन राजकीय कला का एक महत्वपूर्ण उदाहरण पाषाण स्तम्भ है। ये स्तम्भ एकाष्मक पत्थर से निर्मित हैं। यह स्तम्भ 20 फीट से अधिक लम्बे हैं। जिनका वजन लगभग 50 टन है। इन स्तम्भों के तीन भाग हैं – स्तम्भ का सबसे नीचे का भाग, जो भूमिगत भाग कहलाता था। दुसरा भाग, मध्य भाग कहा जाता था। तथा तीसरा महत्वपूर्ण शीर्ष भाग होता था। इन स्तम्भों की चमकदार पॉलिष इन्हें और भी आकर्षक रूप प्रदान करती थी। स्तम्भ के शीर्ष भाग में उल्टे कमल का फूल बना हुआ है। चबूतरे के उपर हंस , सिंह, हाथी, बैल भिन्न–भिन्न पषुओं की आकृतियाँ बनी हुई है। बिहार में वैषाली स्थित अषोक स्तम्भ प्राप्त हुआ है, जो संभवतः सबसे प्राचीन है। तथा इस पर कोई भी अभिलेख उत्कीर्ण नहीं है। मौर्यकालीन स्तम्भों पर ईरानी कला की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है।

मौर्यकालीन स्तम्भों में सबसे महत्वपूर्ण चार सिहों से युक्त सारनाथ का स्तम्भ है। इस स्तम्भ के शीर्ष भाग पर चार सटकर बैठे हुए सिंहों की आकृति हैं। भारत सरकार द्वारा इस आकृति को राजकीय चिन्ह के रूप में अपनाया गया है। सिंहों की आकृतियों के नीचे छोटे–छोटे चक्र हैं। इन पर हाथी, घोड़ा, बैल तथा सिंह की आकृतियाँ है। सारनाथ के पाषाण स्तम्भ पर अषोक का लघु लेख

उत्कीर्ण है, जिसमें बौद्ध संघ में फूट डालनेवालों को कठोर दंड देने की बात कही गई है। बिहार में चार स्थलों – लौरिया नंदनगढ़, लौरिया – अरेराज (पष्चिमी चम्पारण), रामपूरवा (पूर्वी चम्पारण) एवं वैषाली से अषोक के स्तम्भ प्राप्त हुए हैं। जिनमें लौरिया नन्दनगढ़ से प्राप्त स्तम्भ को पाषाण – स्तम्भों में सबसे सुन्दर माना गया है।

अषोककालीन स्तम्भों में से कुछ में धर्म की षिक्षाएँ उत्कीर्ण की गईं हैं। जिनमें दिल्ली का टोपरा स्तम्भ, लौरिया अरेराज का स्तम्भ, इलाहाबाद का स्तम्भ एवं मेरठ में पाया गया दिल्ली का स्तम्भ शामिल हैं। अषोक के स्तम्भों में इलाहाबाद का स्तम्भ ऐसा है, जिसमें गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की प्रषस्ति भी उत्कीर्ण है। मौर्यकालीन स्तम्भों में रामपुरवा स्तम्भ ऐसा है जिस पर साँड की आकृति उत्कीर्ण है। वैसे अधिकतर स्तम्भों पर सिंह का प्रयोग हुआ है। महात्मा बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित जानकारी नेपाल स्थित रूम्मिनदेई पाषाण स्तम्भ से प्राप्त होती है। यह लेख छोटा है। निग्लीवा पाषाण स्तम्भ से अषोक द्वारा कनकमुनि बुद्ध के स्तूप की मरम्मत करवाने की जानकारी मिलती है। मौर्यकालीन पाषाण धार्मिक स्तम्भों में बेसनगर का पाषाण स्तम्भ महत्वपूर्ण है। इसका निर्माण ग्रीक राजदूत हेलियोडोरस द्वारा करवाया गया था।

मौर्यकाल में पर्वतों को काट कर अनेक गुफाओं का निर्माण किया गया था। बिहार में इन गुफाओं का निर्माण नागार्जुनी पर्वत एवं बराबर पर्वत के पत्थरों को काटकर सम्राट अषोक एवं उनके पौत्र दषरथ द्वारा करवाया गया था। गुफाओं का निर्माण बौद्ध भिक्षुओं एवं आजीवक सम्प्रदाय के अनुयायियों हेतु करवाया गया था। राजगीर स्थित सोन भंडार की गुफाओं का निर्माण भी इसकी काल में करवाया गया था। गुफाओं के अंदर की चमकीली पॉलिष मौर्यकालीन कला का अद्भुत उदाहरण है। इन गुफाओं से सम्राट अषोक एवम् उनके पौत्र दषरथ के अभिलेख प्राप्त हुए है।

सम्राट अषोक के काल में निर्मित गुफाओं में सुदामा गुफा का निर्माण अषोक ने अपने राज्याभिषेक के 17 वें वर्ष में तथा कर्णचौपड़ गुफा का निर्माण शासन–काल के 19 वें वर्ष में करवाया था। सुदामा गुफा सबसे प्राचीन गुफा मानी जाती है। लोमेष ऋषि की गुफा भी सुदामा गुफा के समान है किन्तु अन्दर की बनावट में थोड़ी सी भिन्नता देखने को मिलती है। लोमेष ऋषि गुफा के प्रवेष द्वार पर हाथियों द्वारा स्तूप पूजा तथा मेहराब में जालीदार कार्य किया गया है।

दषरथ कालीन गुफाओं में, गया जिले में नागार्जुनी पर्वत पर तीन गुफाओं का निर्माण किया गया, जिनमें दषरथ के लेख उत्कीर्ण हैं। इस काल की निर्मित एक अन्य गुफा, गोपी गुफा भी है।

सम्राट अषोक द्वारा स्तूपों का भी निर्माण करवाया गया था। बौद्ध अनुश्रुतियों के अनुसार अषोक ने 84 हजार स्तूपों का निर्माण करवाया था। सम्राट अषोक द्वारा निर्मित साँची एवं भरहूत के स्तूप महत्वपूर्ण हैं।

मौर्यकालीन लोककला के अन्तर्गत अनके मूर्तियों का निर्माण हुआ। मौर्यकालीन मूर्तियाँ, आगरा–मथुरा, पटना, बेसनगर, काषी, तक्षषिला, भीटा तथा कौषांबी आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं। पटना के लोहानीपुर से दो पुरूषों की नग्न मूर्तियाँ मिली हैं। इन मूर्तियों को जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ माना गया है। पटना के दीदारगंज से एक स्त्री की प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह मूर्ति मटियाले भूरे रंग में बालू के पत्थर से निर्मित है। मूर्ति का मुखमण्डल गोल है, शरीर भरा हुआ तथा होंठों पर हल्की सी मुस्कान है। इस मूर्ति में प्रतीत हो रही सजीवता से नारी – सौन्दर्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है। पटना से प्राप्त कुछ मूर्तियों को पुरातत्ववेत्ता डॉ० काषी प्रसाद जायसवाल ने अजातषत्रु तथा उदयन की मूर्तियाँ बताया है, जबकि अधिकांष इतिहासकारों द्वारा इन्हें अज्ञात यक्ष की मूर्ति माना गया है। इन मूर्तियों में एक मूर्ति पर सिर नहीं है, पैर लम्बे तथा भारी भरकम हैं। इन मूर्तियों की चमकदार पॉलिष दर्षकों का ध्यान आकर्षित करती है। बुलन्दीबाग से एक नारी मूर्ति तथा एक हँसते हुए बालक का षिरोभाग प्राप्त हुआ है।

मौर्यकाल में जिन मूर्तियों का निर्माण किया गया उनकी आकृतियाँ अनुपम तथा अद्वितीय हैं। इनमें उड़ीसा की धौली चट्टान को काटकर बनायी गयी हाथी की आकृति तथा कालपी (देहरादून, उत्तराखण्ड) से प्राप्त मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

कुछ विद्वानों द्वारा मौर्यकालीन मूर्तिकला पर विदेषी प्रभाव को स्वीकार किया गया है। तथा मौर्यकालीन मूर्तियों की चमक जो कि आकमेनियम राजभवनों में भी मिलती है। कुम्हरार से प्राप्त 80 स्तम्भों वाला विषाल भवन जो ईरानी वास्तुकला से प्रेरित माने जाते हैं। अषोक स्तम्भों में उल्टे कमल की आकृति, ईरान के घण्टीनुमा स्तम्भ से समानता रखते हैं, आदि तर्क अपने कथन की पुष्टि में दिए हैं।

निष्कर्षतः मौर्यकालीन मूर्तिकला पर यूनानी प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु यह प्रभाव प्रत्यक्ष न होकर ईरानी या असीरियन वास्तुकला के माध्यम से अधिक हो सका है।

गुप्तकला

बिहार क्षेत्र में गुप्तकालीन कला एवं संस्कृति के साक्ष्य मिलने से यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में भी कला काफी विकसित थी। भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को स्वर्णकाल की संज्ञा दी जाती है। इस स्वर्णकाल की अवधारणा में गुप्तकालीन कला का विकास भी एक महत्वपूर्ण आयाम था। बिहार में कला के कुछ साक्ष्य राजगीर, नालंदा एवं वैषाली से प्राप्त हुए हैं। गुप्तकालीन निर्मित मूर्तियों में अति प्राचीन साक्ष्य बिहार से ही प्राप्त हुए हैं। के०पी० जायसवाल शोध–संस्थान के माध्यम से कुम्हरार क्षेत्र में हुए उत्खनन में भी गुप्तकालीन कला के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

पालकला

बिहार क्षेत्र में पाल–कला महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध रही है। पाल कला को पालवंषीय शासकों धर्मपाल एवं देवपाल द्वारा संरक्षण दिया गया तथा इसकी प्रगति हेतु गंभीर प्रयास किए गए। पाल–कला बिहार के साथ–साथ बंगाल क्षेत्र में भी प्रचलित रही है। पाल–कला के प्रमुख कलाकार धीमन एवं बीठपाल थे, जो नालंदा (बिहार) के निवासी थे। पालकालीन कला को मूर्तिकला, मृदभाण्ड कला, चित्रकला, भित्तिचित्र एवं स्थापत्य कला में अध्ययन की सुविधा हेतु विभाजित कर वर्णन किया जा सकता है।

पालकालीन मूर्तिकला में पाषाण एवं काँसे का मुख्यतः प्रयोग किया जाता था। काँसे की मूर्तियों को साँचे में ढ़ाल कर भिन्न–भिन्न आकृति प्रदान की जाती थी। पाषाण मूर्तियों के निर्माण हेतु काले बेसाल्ट पत्थरों का प्रयोग किया जाता था, जो पत्थर वर्तमान झारखंड के संथाल परगना तथा बिहार में मुंगेर जिले से प्राप्त किया जाता था। पालकालीन मूर्तियों के साक्ष्य बिहार में नालंदा तथा गया के समीप कुक्रीहार से प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ साक्ष्य अंतिचक एवं इमादपुर आदि स्थानों से भी प्राप्त हुए हैं। पालकालीन मूर्तियों में प्रमुखतया हिन्दू एवं बौद्ध धर्म से सम्बन्धित मूर्तियों का निर्माण किया जाता था। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत महात्मा बुद्ध, बोधिसत्व, अवलोकितेष्वर, भावी बुद्ध मैत्रेय आदि मूर्तियों के साथ हिन्दू धर्म से सम्बन्धित गणेष, विष्णु, सूर्य एवं उमा–महेष्वर आदि देवताओं की मूर्तियाँ निर्मित की गई थी।

पालकालीन मूर्तिकला में अलंकरण पर विषेष बल दिया जाता था। तथा शरीर के अग्र भाग को दर्षाने पर विषेष दृष्टि प्रदान की जाती थी। पाल काल में मृदभाण्ड कला भी विकसित अवस्था में थी। ये मूर्तियाँ धार्मिक तथा सामान्य जन जीवन से सम्बन्धित होती थी। तथा इनका प्रयोग दीवारों पर

सजावट हेतु किया जाता था। पालकालीन कला का एक अनुपम उदाहरण एक स्त्री की तख्ती पर बैठी हुई मूर्ति है, जो श्रृंगार की मुद्रा में बैठी हुई है। उस स्त्री के शरीर को आभूषणों से ढ़ँक कर उसकी सुंदरता में वृद्धि कर दी गई है।

पालयुग में चित्रकला का भी काफी विकास हुआ। इस काल में पाण्डुलिपि चित्रण के अलावा दीवारों पर भी चित्र अंकित किए जाते थे। इस काल में चित्रित पांडुलिपियाँ ताड़पत्र पर लिखी गई थी। अष्टसहसरिका प्रज्ञापरमिता तथा पंचरक्ष इनके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये पाण्डुलिपियाँ वर्तमान काल में कैम्ब्रिज विष्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं।

भित्तिचित्र पालयुग की कला का एक अन्य प्रकार है। पालयुगीन भित्ति–चित्र में अजन्ता तथा बाघ की गुफा चित्रों से समानता दिखाई पड़ती है। भित्ति चित्र का एक प्रमुख साक्ष्य बिहार में सरायस्थल (नालंदा) से प्राप्त हुआ है, जिसमें ग्रेनाइट पत्थर के बने हुए चबूतरे के नीचे के भाग पर कुछ ज्यामितीय, फूलों, मनुष्यों तथा पषुओं की आकृति बनी हुई है।

पाल शासकों द्वारा स्थापत्य कला में क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी गयी। पालयुगीन स्थापत्य कला के अवषेष नालंदा, विक्रमषिला तथा ओदंतपुरी महाविहार के रूप में देखे जा सकते हैं। नालंदा में बौद्ध भिक्षुओं हेतु आवास का निर्माण भी किया गया था। अंतिचक से विक्रमषिला महाविहार के अवषेष, ईंट से निर्मित मंदिर, स्तूप एवं पत्थर व मिट्टी से निर्मित गौतम बुद्ध की विषाल मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि पाल युग में विभिन्न कलाओं के संरक्षण से न सिर्फ तत्कालीन कला का विकास हुआ बल्कि भविष्य की कला हेतु अप्रतिम उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

पटना कलम

बिहार की कला एवं चित्रकला में पटना कलम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पटना कलम चित्रकला, लघुचित्रों की शैली है। इस चित्रकला के विकास की पृष्ठभूमि मुगल साम्राज्य के पतन से जुड़ी हुई है। मुगल शासन के पतन काल में शाही दरबार में कलाकारों को प्रश्रय नहीं मिलने के कारण कलाकार पलायन कर अन्य स्थानों पर बसने लगे। तथा उन्होंने कला की प्रगति को जारी रखा। ऐसे ही मुगल दरबार से पलायित कलाकारों का आगमन पटना में हुआ और उन्होंने पटना

कलम का विकास किया। इस शैली में मुगलषाही शैली, तत्कालीन ब्रिटिष शैली एवं स्थानीय शैली की भी विषिष्टताएँ शामिल थी।

पटना–कलम अथवा पटना–शैली का विकास युग अठारहवीं शताब्दी के मध्य (1750 ई०) से लेकर बीसवीं शताब्दी के आरंभ (1925 ई०) तक रहा। संभवतः यह भारत की पहली कला शैली रही है, जिसके अन्तर्गत चित्रांकन में आम जन–जीवन को आधार बना कर चित्रित किया गया है। पटना कलम शैली के चित्र कागज तथा हाथी दाँत पर बनाए जाते थे। इस शैली में लैंडस्केप का अधिक प्रयोग नहीं किया जाता था। साथ ही मुगल शैली की तरह भव्यता भी देखने को नहीं मिलती है।

मधुबनी चित्रकला

बिहार में मधुबनी चित्रकला अथवा मिथिला पेंटिंग, कला के एक महत्वपूर्ण पक्ष को प्रदर्षित करती है। इस कला का ऐतिहासिक साक्ष्य ज्योतिरीष्वर के 'वर्णरत्नाकर' में 'अल्पाइन' के नाम से मिलता है। तथा मैथिल कवि विद्यापति की रचना कीर्तिपताका में 'अरिपन' के नाम से उल्लेख किया गया है।

मधुबनी चित्रकला तीन प्रकार की होती है– भित्तिचित्र, अरिपन तथा पट्टचित्र। भित्तिचित्र के अन्तर्गत गोसनी घर की सजावट तथा कोहबर घर की सजावट की जाती है। अरिपन के अन्तर्गत आँगन अथवा चौखट के सामने जमीन पर कूटे हुए चावल के पानी में रंग मिला कर चित्र बनाए जाते हैं। मधु बनी चित्रकला के पट्टचित्रों के विकास में नेपाल की पट्टचित्रकला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

मधुबनी चित्रकला के अन्तर्गत चित्रित वस्तुओं को सांकेतिक स्वरूप दिया जाता है। चित्रों का निर्माण अंगुलियों अथवा बाँस निर्मित कूँची से किया जाता है। चित्रों के निर्माण में प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। प्रमुख रंगों में लाल, पीला, नीला, काला, हरा, बैंगनी आदि शामिल हैं। यह चित्रकला भारत ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी ख्याति अर्जित कर चुकी है। जापान के तोकामाची सिटी में मधुबनी चित्रकला का संग्रहालय बनाया गया है।

जादोपटिया चित्रकला

बिहार में प्रचलित चित्रकलाओं में प्राचीन चित्रकला परंपरा से प्रेरित एक चित्रकला रही है 'जादोपटिया चित्रकला'। इस चित्रकला में संथाल समाज की लोक गाथाओं, धार्मिक विष्वासों एवं नैतिक षिक्षा आदि को शामिल किया जाता है।

थंका पेंटिंग

मूलतः तिब्बती चित्रषैली–थंका पेंटिंग का प्रादुर्भाव बिहार से माना जाता है। इस चित्रषैली में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कथाओं एवं धर्मोपदेषों को मुख्य विषय बना कर चित्रांकन किया जाता है।

मंजूषा चित्रषैली

प्राचीन काल में प्रसिद्ध अंग क्षेत्र, जिसे वर्तमान में भागलपुर क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र में मंजूषा चित्रषैली प्रसिद्ध रही है। इसके अन्तर्गत बिहुला–विषहरी की कथाओं पर आधारित चित्रांकन किया जाता है। जिसमें सनाठी (सनाई) की लकड़ी का प्रयोग होता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बिहार का क्षेत्र, इतिहास में प्राचीन काल से कला एवं चित्रकला के क्षेत्र में समृद्ध रहा है। तथा इतिहास की कलाओं से प्रेरणा लेकर वर्तमान काल में भी कला एवं चित्रकला का विकास जारी है।

संदर्भ स्रोतः

1. झा द्विजेन्द्रनारायण, श्रीमाली कृष्णमोहन, (2005), प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेषालय, दिल्ली विष्वविद्यालय।
2. प्रसाद रमेष, (2016), बिहार, इतिहास कला एवं संस्कृति, पार्वती प्रकाषन, पटना।
3. अहमद इमत्याज, अहसन कमर, (2016), बिहार : एक परिचय, नेषनल पब्लिकेषन, पटना।
4. कर्ण डॉ. विनय, (2017), बिहार सामान्य ज्ञान, लूसेन्ट पब्लिकेषन्स, पटना।
5. मोहन सौमित्र, (2018), बिहार एक परिचय, मैक ग्रॉ हिल्स एजुकेषन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई।
6. राय विजय कुमार, (2018), बिहार एक अवलोकन, विवास पॅनोरमा प्रकाषन, दिल्ली।

7. कुमार विजय, (1998), बिहार इतिहास एवं संस्कृति, उपकार प्रकाषन, आगरा।
8. दास विषेष्वर, सिंह राकेष बहादुर, मिश्रा विजय कुमार, (2007–08), बिहारः एक परिचय, जेनरल बुक एजेन्सी, पटना।
9. राउत सुरेन्द्र, बिहार एट ए ग्लांस, प्रबोधन पब्लिकेषन, दिल्ली।